32.

तित्थयर

जैन भवन

वर्ष ६ अंक ६ : अक्टूबर १६८२

बनारसी साड़ी

इण्डियन सिल्क हाउस

कॉलेज स्ट्रीट मार्केट • कलकत्ता-१२

Prakash Trading Company

12 INDIA EXCHANGE PLACE
CALCUTTA-700001

Gram : PEARLMOON   Telephone : 22-4110
22-3323

The Bikaner Woollen Mills

**Manufacturer and Exporter of Superior Quality
Woollen Yarn/Carpet Yarn and Superior
Quality Handknotted Carpets**

Office and Sales Office :

BIKANER WOOLLEN MILLS

Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phones : Off. 3204
Res. 3356

Main Office :

4 Mir Bhor Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 33-5969

Branch Office :

The Biksner Woollen Mills
Srinath Katra : Bhadhoi
Phone : 378

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र
वर्ष ६ : अंक ६
अक्टूबर १९८२

☐

संपादन
गणेश ललवानी
राजकुमारी बेगानी

☐

आजीवन : एक सौ एक
वार्षिक शुल्क : दस रुपये
प्रस्तुत अंक : एक रुपया

☐

प्रकाशक
जैन भवन
पी - २५ कलाकार स्ट्रीट
कलकत्ता-७००००७

☐

मुद्रक
सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स
२०५ रवीन्द्र सरणी
कलकत्ता-७००००७

सूची

महावीर ने कहा था १६५
त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र १७१
धातुमय जैन प्रतिमाएँ १७६
अर्द्धकथानक १८६
जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या १९१

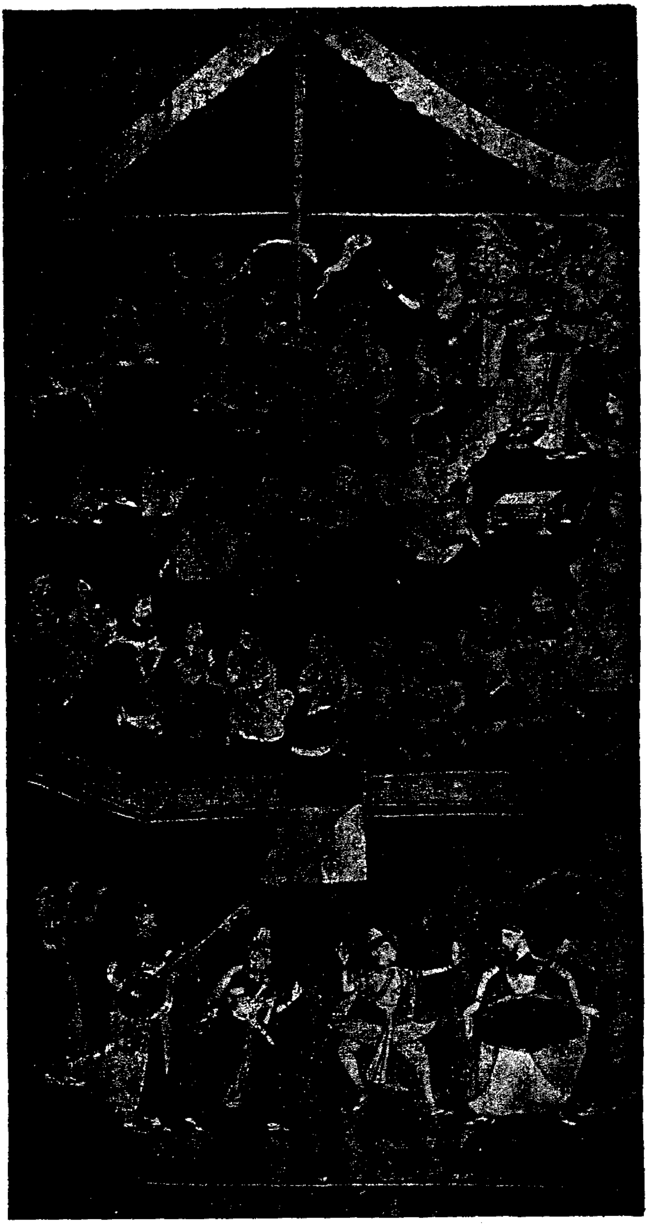

शालिभद्र का विवाह
शालिभद्र चरित, नरेन्द्र सिंह सिंघी संग्रह

महावीर ने कहा था

[पूर्वानुवृत्ति]

प्रमाद सम्बन्धी

समय अतिक्रान्त होने पर
वृक्ष पत्र जैसे
सूखकर झड़ जाते हैं
वैसा ही है मनुष्य जीवन,
अतः क्षण भर के लिए भी
प्रमाद मत करो।

कुशाग्र स्थित जलबिन्दु
जैसे क्षणस्थायी है
वैसा ही है मनुष्य जीवन,
अतः क्षण भर के लिए भी
प्रमाद मत करो।

जीवन जब अनिश्चित है
व देह धारण अनियत
तब पूर्व जन्मार्जित कर्म
शीघ्र क्षय करो,
क्षणमात्र भी प्रमाद मत करो।

मनुष्य देह मिलना दुष्कर है,
दीर्घ समय के बाद ही मिलता है,
कर्म का फल भी फिर प्रगाढ़ है,
अतः क्षणमात्र के लिए भी
प्रमाद मत करो।

जब तुम्हारी देह जीर्ण होगी,
श्वेत होंगे केश

तब तुममें शक्ति नहीं रहेगी,
अतः क्षण मात्र के लिए भी
प्रमाद मत करो ।

कमल पत्र
शरत् कालीन स्वच्छ जल होने पर भी
जैसे अलिप्त रहता है
समस्त आसक्ति परिहार कर
उसी प्रकार अलिप्त रहो,
क्षणमात्र के लिए भी
प्रमाद मत करो ।

विषम मार्ग में
अवतरण मत करो,
वैसा करने पर विपथगामी
भार वाहक की भाँति
पश्चात्ताप् करना होगा,
अतः क्षणमात्र के लिए भी
प्रमाद मत करो ।

तुम महासमुद्र
अतिक्रम कर आए हो
फिर किनारे आकर द्विधा क्यों ?
इसको भी पार कर लो,
क्षण मात्र के लिए भी
प्रमाद मत करो ।

दुर्बलता सम्बन्धी

वह मूढ़ है
जो निष्ठुर व अहंकारी है,
मायावी और दुर्वाक्य कथनकारी है,
अविनीत और संयमहीन है,
वह नदी के प्रवाह में

काष्ठ खण्ड की भाँति
प्रवाहित हो जाता है।

वह मूढ़ है
जो इन्द्रिय विषय में अन्ध होकर
स्वहित की चिन्ता नहीं करता,
मात्र विषय भोग में ही क्रमशः डूबता जाता है,
वह श्लेष्मा में चिपकी मक्खी की भाँति
अपने को केवल आबद्ध ही करता है।

वह मूढ़ है
जो भोगों के लिए धर्म परित्याग करता है,
भोग में आबद्ध होकर वह
अपना भविष्य खो देता है।

अपने दुष्कृत के लिए
जो सर्वदा भीत रहता है
वह तस्कर की भाँति दुःख पाता है,
संयम पालन में भी समर्थ नहीं होता।

अभी नहीं तो क्या, बाद में आत्मजय करूँगा
ऐसा जो कहता है
वह शायद सोचता है जीवन चिरन्तन है,
किन्तु शरीर जब शिथिल हो जाता है
और मृत्यु समुपस्थित
उस समय अनुशोचना के अतिरिक्त
और कुछ नहीं रहता।

दूसरों के निद्रित रहने पर भी
तुम जागरूक रहो,
किसी का विश्वास मत करो,
समय कुटिल है शरीर दुर्बल,
भारण्ड पक्षी की भाँति
अप्रमत्त होकर विचरण करो।

जीवन अनिश्चित है
और आयु परिमित,
मुक्ति पथ से अवगत होकर
तुम भोग सुख परिहार करो ।

यह शरीर अनित्य अशुचिमय है,
अशुचिता से ही यह उद्भुत है,
यह क्षणिक आवास मात्र
और दुःखमय है ।

रूप और लावण्य
जिसने तुम्हें मुग्ध कर रखा है
वह विद्युत प्रकाश-सा क्षणभंगुर है,
इसके बाद क्या होगा
वह क्या तुम नहीं देखोगे ?

व्याधि और रोग का घर,
जरा-मरण के वशीभूत
इस शरीर में
मुझे जरा भी आनन्द नहीं ।

कुछ आगे या कुछ पीछे
जिस शरीर का परित्याग कर
मुझे जाना होगा
वह मुझे आनन्द नहीं देता,
बुद्बुद् व फेन की भाँति
वह क्षणस्थायी है ।

जन्म दुःख जरा दुःख
यहाँ तक कि
समस्त संसार ही दुःखमय है,
यहाँ जीवगण
केवल दुःख भोग ही करते हैं ।

कामोपभोग
क्षणिक सुख देते हैं,
किन्तु दुःख
और अधिक दुःख उसका अनुवर्तन करता है,
संसार विमुक्ति में ये बाधक हैं
और अनर्थ की खान।

किम्पाक फल भक्षण का
परिणाम जैसे भयावह है,
कामोपभोग का परिणाम भी
वैसे ही भयावह है।

किम्पाक फल देखने में सुन्दर,
खाने में स्वादिष्ट होता है,
किन्तु खाने पर मृत्यु निश्चित है,
वैसा ही है कामोपभोग।

जो भोगलिप्त है
वह संसार से जकड़ा है,
जो भोगलिप्त नहीं है
वह संसार से जकड़ा नहीं है,
जो भोगलिप्त है
वह संसार चक्र में आवर्त्तित होता है,
जो भोग लिप्त नहीं है
वह मुक्ति प्राप्त करता है।

स्त्रियों के अंग-प्रत्यंगों की
चारुता में,
सुमधुर वाक्य और कटाक्ष में,
मनोभिनिवेश मत करो,
कारण वह
काम वर्द्धित करता है।

पाप कर्म से
इसी क्षण निवृत्त हो जाओ,
कारण जीवन अनिश्चित है,
जो काम मूर्च्छित है
और भोग लिप्त है,
वह संयम के अभाव से
प्रतारित होता है।

कूर्म जैसे अपने अंग-प्रत्यंग
आवरणों में संवृत कर लेता है,
मेधावी भी उसी प्रकार स्वयं के
इन्द्रिय समूह को
पाप कर्म से निवृत कर
आत्मा में समाहित करता है।

जीवन जाने पर भी
धर्म परित्याग नहीं करूँगा
ऐसा जिसका दृढ़-संकल्प है,
झंझा जिस प्रकार मेरु पर्वत को
विचलित नहीं कर सकती
इन्द्रिय ग्राम भी वैसे ही उसे
विचलित नहीं कर सकते।

[क्रमशः

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

श्री हेमचन्द्राचार्य

[पूर्वानुवृत्ति]

ज्येष्ठ पुत्र को ब्रह्म कहना उचित है। इसी दृष्टि से भगवान ने अपने ज्येष्ठ पुत्र भरत को बहत्तर कलाओं की शिक्षा दी। भरत ने भी उन कलाओं को अपने भाइयों और पुत्रों को सिखायी। कारण योग्य व्यक्तियों को प्रदत्त शिक्षा शत शाखा युक्त हो जाती है। प्रभु ने बाहुबली को हस्ती, अश्व, स्त्री और पुरुष के अनेक भेदयुक्त लक्षणों का ज्ञान दिया। ब्राह्मी को दाहिने हाथ से अठारह लिपियाँ और सुन्दरी को बायें हाथ से गणित शिक्षा प्रदान की। वस्तु का मान (माप), उन्मान (तोला-माशादि वजन), अवमान (गज, हाथ, अंगुल आदि माप), प्रतिमान (सेर, पाव आदि वजन) शिक्षा देने के साथ-साथ मणि आदि गूँथने की कला भी सिखायी।

राजा, अध्यक्ष, कुलगुरु के समक्ष वादी प्रतिवादी जैसा व्यवहार प्रचलित हुआ। हस्तीपूजा, धनुर्वेद, वैद्य की उपासना, युद्ध, अर्थशास्त्र, बन्धघात और बध अर्थात् कैद, कशाघात, प्राणदण्ड और सभा संगठन उसी समय से प्रवर्त्तित हुआ। यह मेरी माँ है, ये मेरे पिता हैं, यह भाई, यह स्त्री, यह पुत्र, यह मेरा घर, यह मेरा धन आदि मेरे का ममत्व बोध उसी समय से प्रचलित हुआ। लोगों ने प्रभु को विवाह के समय अलंकारों से अलंकृत और वस्त्रों से सुसज्जित देखा था अतः वे भी स्वयं को वस्त्रों व अलंकारों से सुसज्जित करने लगे। भगवान को उन्होंने पाणिग्रहण करते देखा था अतः लोग उस समय से आज तक वैसा ही करते आ रहे हैं। कारण महापुरुषों के द्वारा पथ चिरन्तन होता है। प्रभु के विवाह से ही अन्य के द्वारा प्रदत्त कन्या के साथ विवाह करने का प्रयास प्रारम्भ हुआ। चूड़ाकर्म (जातक को सर्वप्रथम मुण्डन कर शिखा रखना), उपनयन (यज्ञोपवीत धारण), युद्धनाद, प्रश्न करना भी तभी से आरम्भ हुआ। ये समस्त कार्य यद्यपि सावद्य है फिर भी प्रभु ने संसारी लोगों के मंगल के लिए इनका प्रवर्त्तन किया। उनकी आम्नाय में आज तक पृथ्वी पर वह कला प्रवर्त्तित है। अर्वाचीन बुद्धि के पण्डितगणों ने इस विषय में अनेक शास्त्रों की रचना की है, वे प्रभु के उपदेश से चतुर हुए हैं। कारण उपदेशक नहीं रहने से मनुष्य पशु-सा व्यवहार करता।

विश्व की स्थिति रूपी नाटक के सूत्रधार प्रभु ने उग्र, भोग, राजन्य और क्षत्रिय नामक चार कुल स्थापित किए। दण्डदानकारी (आरक्षक और दुष्टों को दण्ड देने वाला) सम्प्रदाय के लोग उग्रकुल के अभिहित हुए। इन्द्र के जैसे त्रायस्त्रिंश देवता रहते हैं उसी प्रकार जो उन्हें परामर्श देते (मंत्री) उन्हें भोगकुल के अन्तर्गत रखा गया। प्रभु के समान आयु सम्पन्न जो प्रभु के साथ ही रहते थे और उनके मित्र थे वे राजन्य कहलाए। अवशिष्ट व्यक्ति क्षत्रिय नाम से परिचित हुए।

इस प्रकार प्रभु नवीन व्यवहार नीति का प्रवर्त्तन कर नवोढ़ा स्त्री की भाँति नवीन राज्यलक्ष्मी का उपभोग करने लगे। वैद्य जिस प्रकार रोग की चिकित्सा करता है, यथायोग्य औषध देता है उसी भाँति उन्होंने अपराधियों के अनुरूप दण्ड देने का विधान दिया। दण्ड के भय से भयभीत साधारण मनुष्य चोरी आदि अपराध से विरत रहते। कारण दण्ड सभी प्रकार के अपराध रूपी सर्प को वशीभूत करने का विषोपहारक मन्त्र है। जिस प्रकार सुशिक्षित लोग प्रभु की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करते उसी प्रकार वे भी किसी के गृह, क्षेत्र और उद्यानों की मर्यादा भी लंघन नहीं करते थे। वृष्टि भी जैसे मेघाडम्बर में प्रभु के न्याय धर्म की प्रशंसा करती और समय पर धान्य क्षेत्रों में जल देने के लिए वारि वर्षण करती। हवा में लहराते हुए धान के क्षेत्र, इक्षु के क्षेत्र, गोव्रज, चांचल्यमय नगर और ग्राम समृद्धि से इस प्रकार शोभित थे मानों स्वामी की ऋद्धि को इंगित कर रहे हैं। भगवान ने सभी को क्या त्याज्य है क्या ग्रहणीय है इसका ज्ञान करवाया। परिणामतः भरत क्षेत्र प्रायः विदेह क्षेत्र की भाँति हो गया। इस भाँति नाभिराय के पुत्र ने राज्याभिषेक के पश्चात् त्रेसठ लाख पूर्व तक पृथ्वी का पालन किया।

एकबार कामदेव का निवास स्थल वसन्त ऋतु आयी। परिवार परिजनों के अनुरोध पर प्रभु उपवन में गए। वहाँ मानो वसन्त ऋतु देह धारण कर आयी है इस प्रकार फूलों के अलंकार से सज्जित होकर वे पुष्प गृह में उपवेशित हुए। उस समय पुष्प और आम्रमंजरी के मकरन्द से उन्मत्त होकर भ्रमरगण गुंजन कर रहे थे। लगता था मानों वसन्त लक्ष्मी ही प्रभु का स्वागत कर रही है। पंचम स्वर में गाने वाली कोकिला ने नाट्यारम्भ के पूर्व का मंगलाचरण आरम्भ किया तब मलय पवन नट बनकर लतारूपी रमणियों को नृत्य शिक्षा देने में प्रवृत्त हो गया। मृगलोचनाएँ अपने-अपने कामुक पतियों की तरह कुरुबक, अशोक और बकुलवृक्ष को आलिंगन करने लगीं, उन्हें

पदाघात कर अपने-अपने मुख का मदपान करवाया। तिलक वृक्ष ने अपनी प्रबल सुगन्ध से भ्रमरों को तुष्ट कर युवकों के ललाट की भाँति वन को सुशोभित किया। पीत पुष्पा लवलीलता अपने पुष्पगुच्छों के भार से इस प्रकार झुकी हुई थी जिस प्रकार कृशांगी अपने परिपुष्ट स्तनों के भार से झुकी रहती है। चतुर कामी पुरुष जिस प्रकार मन्द-मन्द आलिंगन करता है उसी प्रकार मलय पवन आम्रलताओं को धीरे-धीरे आलिंगन करने लगा। वेत्रधारी पुरुषों की तरह कामदेव जम्बू, कदम्ब, आम्र और चम्पक वृक्ष रूपी वेत्रों से पथिकों को आहत करने लगा। नवीन पाटल पुष्प के सम्पर्क से सुगन्धित मलय-पवन सबको आनन्दित करने लगा। मकरन्दपूर्ण महुआ वृक्ष भ्रमरों के गुंजन से इस प्रकार गुंजित हो रहे थे जैसे मधुपात्र भ्रमर गुंजन से गुंजरित होते हैं। गोलक और धनुष अभ्यास के लिए कामदेव ने मानो कदम्ब पुष्प के गोलक तैयार किए। परोपकार ही (सरोवर खनन जलगृह निर्माण आदि) जिसका इष्ट है इस प्रकार पवन ने बासन्ती लता के भ्रमर रूपी पान्थों के लिए मकरन्द गृह निर्माण कर रखा था। जिन पुष्पों का आमोदी प्रभाव बहुत कष्ट से निवारित किया जाता है ऐसे सिन्धुवार वृक्षों ने पान्थों की नासिकाओं में सुगन्ध वहन कर उन्हें मुग्ध बना दिया। बसन्त रूपी उद्यान पालक के द्वारा नियुक्त होकर चम्पक वृक्ष अवस्थित भ्रमर निःशंक होकर विचर रहे थे। यौवन जिस प्रकार स्त्री-पुरूष को सुशोभित करता है उसी प्रकार बसन्त ऋतु भी अच्छी-बुरी सभी प्रकार की लताओं और वृक्षों को सुशोभित कर रही थी। मृगाक्षियाँ पुष्प चयन कर रही थीं मानों वे महापर्व में बसन्त को अर्घ देने की तैयारी कर रही हों। पुष्प चयन के समय उनके मन में यह भी आया होगा कि उनके रहते हुए कामदेव को अन्य पुष्प धनुष की क्या आवश्यकता है? बासन्ती लता के पुष्प चयन किए जा रहे थे और उन पर भ्रमर इस प्रकार गुंजन कर रहे थे मानों पुष्पों के वियोग में वे सब गुंजन के बहाने क्रन्दन कर रहे हैं। कोई सुन्दरी मल्लिका पुष्प चयन करने जा रही थी उसके उत्तरीय प्रान्त के अटक जाने के कारण वह वहीं खड़ी रही, इससे लगता है जैसे मल्लिका उसका उत्तरीय प्रान्त पकड़कर उसे दूर नहीं जाने देती। एक सुन्दरी चमेली फूल तोड़ना चाह रही थी किन्तु वहाँ बैठे एक भ्रमर ने उसके ओष्ठों का दंशन कर लिया मानों उसके आश्रय भंगकारी पर रुष्ट हो गया था। कोई सुन्दरी बाहुलता ऊँची कर पुष्प चयन करने के साथ-साथ उसके बाहुमूलों पर बद्ध दृष्टि पुरुष का हृदय भी चयन कर रही थी। नवीन पुष्पों के गुच्छों को हाथ में लेकर कुछ

चयनकारिणियाँ संचरमान लता-सी लग रही थीं। वृक्ष शाखाओं पर कौतुकवश पुष्प चयनकारिणियों ने झूलना प्रारम्भ कर दिया था। उन्हें देखकर लगता मानों उस वृक्ष में स्त्रीरूप फल झूल रहा है। कोई युवक स्वयं ही मल्लिका कलियाँ चयन कर अपनी प्रिया के लिए मुक्ता-माला-सी माला एवं अन्य अलंकार प्रस्तुत कर रहा था। किसी ने अपनी प्रिया की कवरी को विकसित फूलों से इस प्रकार भर दिया मानो कामदेव के तूनीर को उसने सजा दिया है। कोई पाँच रंग के फूलों से इन्द्रधनुषी माला अपने हाथों से गूँथकर अपनी प्रिया को पहनाकर प्रसन्न कर रहा था। कोई युवक क्रीड़ाछल से निक्षिप्त पुष्पकन्दुक-भृत्य की भाँति आहरण कर ला-लाकर अपनी प्रिया को दे रहा था। कुछ मृगाक्षियाँ झूले में झूलती हुई सामने के वृक्ष पर इस प्रकार पदाघात कर रही थी मानों अपराधी पति पर पैर से प्रहार कर रही हों। कोई नवोढ़ा सखियों द्वारा पति का नाम पूछने पर लज्जा से आनमित होकर उनके पद-प्रहार को सहन कर रही थीं। कोई युवक अपने सामने बैठी भयभीत प्रिया को गाढ़ आलिंगन देने की इच्छा से खूब जोर से झूला ले रहा था। वृक्षों की शाखाओं पर बँधे झूले रसिक जनों के अधिक वेग से धावित करने के कारण वृक्षों के पत्रों के मध्य बार-बार आने-जाने से वे मर्कट से लगते थे।

इस प्रकार नगर निवासियों को लीला विलास में मग्न देखकर प्रभु के मन में विचार उत्पन्न हुआ कि क्या अन्यत्र भी इसी प्रकार लीला विलास होता है ? विचार करते-करते अवधि ज्ञान से पूर्व जन्मों से लेकर अनुत्तर विमान पर्यन्त समस्त स्वर्ग उन्हें स्मरण हो आए। चिन्तन करते हुए उनका मोह भंग हुआ। वे सोचने लगे—इन विषयाक्रान्त मनुष्यों को धिक्कार है! ये आत्म-सुख के विषय में कुछ नहीं जानते। हाय! ये संसार रूपी कूप में यन्त्रारूढ़ कलश की भाँति बार-बार यातायात करते हैं। मोहान्ध मनुष्यों के जन्म को ही धिक्कार है! इनका जीवन उसी प्रकार व्यर्थ बीत जाता है जैसे निद्रा रहित मनुष्यों की रात्रि व्यर्थ व्यतीत होती है। सत्य ही कहा गया है—राग, द्वेष और मोह उद्योगी प्राणी के धर्म-मूल को उसी प्रकार कुतर देता है जैसे वृक्ष की जड़ को चूहा विनष्ट कर देता है। मोहान्ध जीव वट-वृक्ष की भाँति क्रोध को विस्तृत कर देता है। यही क्रोध जो उसे वर्द्धित करता है उसी को समूल ग्रस लेता है। मान पर आरूढ़ व्यक्ति हाथी पर आरूढ़ व्यक्ति की तरह किसी की भी परवाह न कर मर्यादा का लंघन करता है। दुराशय प्राणी कौंच बीज

की फली की भाँति उत्पातकारी माया का परित्याग नहीं करते। तुषोदक से जिस प्रकार दूध नष्ट हो जाता है, काजल से जिसप्रकार उज्ज्वल वस्त्र मलिन हो जाता है उसी प्रकार लोभ से जीव अपने उत्तम गुणों को मलिन कर देता है। जब तक इस संसार रूपी बन्दी गृह के चार कषाय रूपी चोकीदार जाग्रत रहकर आँख गड़ाए हैं तब तक मोक्ष कैसे प्राप्त हो। हाय! प्रिया के आलिंगन में बद्ध मनुष्य भूतग्रस्त की भाँति क्षीयमान आत्मा को देख नहीं पाते हैं। औषधि से सिंह को जैसे नीरोग किया जाता है उसी प्रकार मनुष्य भी नानाविध खाद्य सामग्री से स्वयं ही अपनी आत्मा को उन्मादित कर देता है। सिंह के नीरोग होने पर जिस प्रकार वह स्वस्थ बनाने वाले पर ही आक्रमण करता है उसी प्रकार आहारादि द्वारा परिपुष्ट इन्द्रिय आत्मा को उन्मादी कर भव भ्रमण का कारण रूप बनाता है। यह सुन्दर है, सुगन्धित है, यह नहीं है किसे ग्रहण करूँ यह विचार कर लम्पट मूढ़ होकर भ्रमर की भाँति भ्रमण करता रहता है उसे कभी सुख नहीं मिलता। बालक को जिस प्रकार खिलौना देकर भुलावे में डाला जाता है उसी प्रकार सुन्दर वस्त्रों से वह अपनी आत्मा को ही भुलावे में डालता है। निद्रित मनुष्य जिस प्रकार शास्त्र चिन्तन से वंचित रहता है उसी प्रकार बीणा वेणु के गीत स्वर से दत्तकर्ण होकर मनुष्य अपने स्वार्थ से ही भ्रष्ट होता है। एक साथ कुपित त्रिदोष—वात, पित, कफ—की भाँति उन्मत्त होकर विषय द्वारा जीव स्वयं की चेतना को खो देता है। अतः उन्हें धिक्कार!

इस प्रकार जब प्रभु का मन संसार से विरक्त होकर चिन्ताजाल में बद्ध था उसी समय सारस्वत, आदित्य, वह्नि, अरुण, गर्दितोष, तुषिताश्व, अव्याबाध, मरुत और रिष्ट इन नो प्रकार के ब्रह्म नायक, पंचम देवलोक के अन्तेवासी देवगण भगवान के निकट आए और द्वितीय मुकुट की भाँति मस्तक पर कमल कलि सदृश अंजलि धारण कर निवेदन किया—"इन्द्र के मुकुटमणि के किरण जाल से जिनके चरण धुले हुए हैं और भरत क्षेत्र के विनष्ट मोक्ष मार्ग को प्रदर्शित करने के लिए जो दीपतुल्य हैं ऐसे हे प्रभु, जिस प्रकार आपने लोक-व्यवहार प्रचलित किया है उसी प्रकार आपका कर्त्तव्य स्मरण कर धर्म तीर्थ प्रवर्त्तित कीजिए।" ऐसा कहकर देवगण ब्रह्मलोक के अपने-अपने स्थान को लौट गए एवं दीक्षा ग्रहण को उत्सुक प्रभु भी नन्दन वन से राज प्रासाद की ओर प्रत्यावर्त्तन कर गए।

द्वितीय सर्ग समाप्त

[क्रमशः

धातुमय जैन प्रतिमाएँ

भँवरलाल नाहटा

जैनागम, इतिहास और कथा साहित्य के परिशीलन से स्पष्ट फलित होता है कि आत्म कल्याण के हेतुभूत प्रबल निमित्त कारण जिन प्रतिमादि का वन्दन पूजन अनादिकाल से होता आया है। देवलोक एवं नन्दीश्वर द्वीप आदि के शाश्वत चैत्य इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। जिनेश्वरों में ऋषभानन, चन्द्रानन, वारिषेण और वर्द्धमान चार नाम शाश्वत हैं जो हर चौबीसी में एकाधिक अभिहित होते हैं। भरतक्षेत्र में कालचक्र के आरों के परिवर्त्तन से कृत्रिम (अशाश्वत) जिनालय-जिनबिम्ब सीमित काल तक ही टिक सकते हैं, पर देवलोक व इतर क्षेत्रों में असंख्य वर्ष प्राचीन जिन बिम्बों की अवस्थिति सर्वविदित है। वाङ्मय में वर्णित परम्परागत प्रवादानुसार वर्त्तमान में भी चतुर्थकाल की प्रतिमाएँ अनेक स्थानों में संप्राप्त हैं। जिन प्रतिमाएँ पाषाणमय, मृण्मय, स्वर्ण-रजत-पित्तलादि अष्ट धातुमय, काष्ठमय और रत्नमय आज भी पायी जाती हैं। राजा महाराजाओं[1] और सम्पन्न श्रावकों के घरों में ही नहीं प्रायः हर श्रावक के घरों में गृह चैत्यालय होते थे और उनमें अधिकांश प्रतिमाएँ धातुमय एवं रत्नमय ही रहती थीं। सार्वजनिक जिनालयों के द्वार खुले रहते हैं। उनमें पाषाणमय प्रतिमाओं का आधिक्य था। आभूषण मुकुट कुण्डलादि वस्तुएँ विशेष पर्वों में धारण कराये जाते थे और भण्डार की चाबियाँ कुंचिक गोष्टिक आदि श्रावकों के घरों में रहती थी। गृह चैत्यालयों में सुरक्षा का प्रबन्ध अधिक था, अतः सोने चाँदी आदि धातुमय बिम्ब वहीं अधिकतर पूजे जाते थे। काल के प्रभाव से अधिकांश गृह चैत्यालयों की प्रतिमाएँ सार्वजनिक मन्दिरों में आ गईं और थोड़े से घर देहरासर रह गये। राजस्थान के घरों में 'मन्दिरी' संज्ञक कक्ष जो आंगन के कोने में शाल के पास में बनता था, वह उसी प्रथा का स्मारक है। आज भी कुछ लोग उसमें चित्र, गट्टाजी एवं कुलदेवियों की स्थापना रखते हैं परन्तु वह उपासना गृह की उपयोगी पद्धति अब प्रायः लुप्त हो गई है।

---

[1] नगरकोट-कांगड़ा के राजमहलों में गृह चैत्यालय था जिसमें स्थित रत्न प्रतिमाओं के दर्शन करने का उल्लेख जय सागरोपाध्याय ने विज्ञप्ति-त्रिवेणी में किया है। मैसूर नरेश के यहाँ भी गृह चैत्यालय था।

जिन प्रतिमाएँ जो लेप्यमय, पाषाणमय, रत्नमय बनती थीं उनमें विविध प्रकार के प्रस्तर उपयोग में लिये जाते थे। जहाँ जिस जाति के पत्थरों की खानें निकट थीं उन्हीं पत्थरों की शिल्पियों ने सुकुमार हाथों द्वारा छेनी से घटित कर हृदय की भाव उर्मियों की अभिव्यक्ति करके अपनी साधना व्यक्त—साकार की। किसी-किसी शिल्पी ने अपने जीवन में केवल इनी-गिनी प्रतिमाएँ ही निर्माण कीं परन्तु उनमें अपने हृदयगत भाव धन को इतना उँडेल दिया है कि दर्शक मुग्ध होकर बाह्य भाव विस्मृत कर अन्तर्लोक में विचरण करने लगता है। कई स्थानों की प्रतिमाओं में इस प्रकार का आकर्षण और सातिशयता हम प्रत्यक्ष देख पाते हैं। वस्तुतः पाषाण खण्ड के अन्दर प्रतिमा तो छिपी पड़ी है, शिल्पी उसके बाहरी स्तर को हटा कर सही रूप का प्रगटीकरण करता है। जैसे हृदयगत भावों को ग्रंथकार शब्द देह में ढालकर, चित्रकार अपनी मनोगत कल्पना को चित्ररूप में साकार करने का उपक्रम करता है, वही बात प्रतिमा शिल्पी की शिल्प साधना में है। यही वस्तु हम पाते हैं अनेक प्राचीन प्रतीकों में, परन्तु आज के यंत्रयुग की भाँति मध्यकाल में भी जहाँ कलाकार का हृदय और मस्तिष्क भावों की गहराई में न उतर कर केवल हाथ ही काम करने लगे, वहाँ कारखानों के उत्पादन की भाँति बाह्य रूप वाली प्रतिमाओं की फसल उतरने लगीं और वह सजीवता और भाव वैभव धारा जो गुप्तकाल में प्रवहमान हो अपने उन्नत शिखर पर आरूढ हुई थी, क्रमशः ह्रास की ओर गतिशील हो गई।

मथुरा की प्राचीन कला में हम जहाँ अनेक विधाएँ प्रतिमाओं की, आयागपट्टों की, परिकरों की व प्रतीक शिल्पादि की पाते हैं हमारा हृदय-मयूर उन्हें देखकर नाचने लगता है। गुप्तकाल में आकर उनमें और उन्मेष जुड़े। शालीनता, सुकुमारता, सुघड़ता, प्रमाणोपेत लचक व भाव भंगिमा और वैभवशाली साज-सज्जा, प्रकृति प्रेरित दृश्यावली जो इस काल में पाषाण खण्डों में उतरी सदा के लिए अपना वैशिष्ट्य जन-मानस के हृदय पर, इतिहास के पृष्ठों पर मुद्राङ्कित कर गई।

कला विकास की प्रवहमान साधना ने वास्तुविद्या—तक्षण कला की प्राञ्जलता में निखार ला दिया। समग्र देश में वह कला अपने उन्नत शिखर पर आरूढ़ हुई पर प्रान्तीय विशेषताओं ने, रूढ़ियों ने उस सुकुमारता में ह्रास लाकर क्रमशः बने शास्त्र नियमों के अनुकरण करते हुए भी नवीन शैली प्रविष्ट कर रही पाषाण प्रतिमाओं और परिकरादि विधाओं में जो परिवर्तन, विकास हुआ वह

धातु प्रतिमादि में भी आना स्वाभाविक था। अलग-अलग प्रांतों से प्राप्त प्रतिमाओं में इतना अधिक वैविध्य आया और निर्देशकों की सूचनानुसार, रुचि अनुसार प्रकारों का प्राचुर्य जो दृष्टिगोचर होता है, आश्चर्यकारी है।

धातु प्रतिमाओं में चौबीसी ही लें तो उसके क्रम में अनेक विधाएँ आईं। केन्द्रीय प्रतिमा के अतिरिक्त अन्य प्रतिमाएँ कहीं द्वितय पंक्ति में, कहीं तोरण पट्ट के ऊपरी भाग में, कहीं कक्ष में, कहीं सीधी सरल पंक्ति में कहीं गोलाकार में निर्मित हुईं। पंचतीर्थी, त्रितीर्थी, इकतीर्थी, सपरिकर आदि प्रतिमाओं में कितने ही प्रकार के प्रतिहार्यों के प्रकार भेद, गगनस्थित गन्धर्वों, किन्नरियों, पार्श्वस्थित इन्द्रादि चामरधारी पुरुष स्त्रियों में, शासन देवियों और यक्षों के विभिन्न प्रवेश ने, नवग्रह-अष्टग्रह के पूर्ण विकसित और संक्षिप्त रूप और स्थान परिवर्त्तन में प्रतिमा के पद्मासन, सिंहासन, लांछन, देवी-देवताओं के अलंकार-आयुध, आसन-मुद्रा आदि के परिवर्तन और स्तम्भों, तोरण, पाये, आधार, प्रभामण्डल, सम्पूर्ण प्रतिमा के आकार-प्रकार और अंग-विन्यास में जो समय-समय पर परिवर्तन आये और देश में सर्वत्र वह शिल्प अपनी-अपनी क्षेत्र-मर्यादा के अनुसार पल्लवित-पुष्पित हुआ और उसमें असंख्य उन्मेष जुड़ते गये।

लेप्यमय-बालुकामय प्रतिमाओं के निर्माण का हम अनेक कथानकों में उल्लेख पाते हैं। रामायण काल में बनी बालुका की प्रतिमा भी सप्रभाव होकर चिर-स्थायी हो गई तथा ओसियाँ आदि की प्रतिमा के बालुकामय होने की प्रसिद्धि है। इन्हीं विधाओं को हम धातु के माध्यम से साकार हुआ पाते हैं पर धातुमय वस्तुएँ भी अनेक बार भट्ठी में गलकर नूतन पर्याय में परिणत हो गई। इतिहास के पृष्ठों में जितनी सोना, चाँदी, पीतल आदि की प्रतिमाएँ निर्मित होने का हवाला पाते हैं, वे अब कहाँ उपलब्ध हैं? उन्हें अवश्य ही गला कर ठिकाने लगा दिया गया, इसमें दो मत नहीं है।

पाषाण प्रतिमाओं को यवनों ने तोड़ा और उनके टुकड़े गल नहीं सकने के कारण मस्जिदों-मकानों में चिन दिए गए चूर-चूर कण-कण हो गए, सड़कें बिछा दी गईं फिर भी जो खण्ड बचे आज भी खुदाई में या खण्डहरों में प्रत्यक्ष दीख पड़ते हैं। मालदा (बंगाल) की आदीना मस्जिद जो कभी आदिनाथ भगवान का बावन जिनालय था—की दिवालों में अखण्ड जिन प्रतिमाओं को उल्टा चिन कर कुरान की आयातें लिख दी गईं उनके प्राचीन मस्जिदों में लगे उपादान इसके साक्ष्य हैं।

मथुरा तीर्थ कल्प से विदित होता है कि वहाँ का बोद्ध स्तूप कुबेरा देवी

ने मेरु पर्वत की स्थापना स्वरूप और मणिरत्नों से निर्माण किया। कालान्तर में श्रीपार्श्वनाथ स्वामी के समय भी जब राजा की नियत बिगड़ गई तो पंचम काल के भावी दृश्य को लक्ष कर देवी ने उसे प्रस्तरमय कर दिया। यहाँ भी पूर्वकाल के धातु शिल्प की बात स्पष्ट है।

अभयकुमार ने मगध के परम्परागत मित्र आर्द्रक देश के युवराज आर्द्रकुमार को प्रतिबोध देने के लिए जिस प्रतिमा को भेजा था, वह भी अवश्य स्वर्णमय और रत्नजटित थी। उसे गले, मस्तकादि पर धारण करने की चेष्टा व उहापोह में ही आर्द्रकुमार को जातिस्मरण होकर बोध प्राप्त हुआ था।

धातु प्रतिमाओं के सहस्रों की संख्या में प्रतिष्ठित होने के उल्लेख प्राचीन गुर्वावलियों एवं प्रबन्ध ग्रन्थादि में पाये जाते हैं। मुसलमानी काल में बहुत-सी प्रतिमाएँ यवनों द्वारा नष्ट कर दी गईं। चिन्तामणिजी के मन्दिर (बीकानेर) की आदिनाथ चौबीसी का परिकर कामरां ने नष्ट कर दिया, जिसका उल्लेख उक्त प्रतिमा के परिकर पर पाया जाता है। यवनों के भय से कुछ प्रतिमाएँ मिट्टी में गाड़ दी गईं। आज भी स्थान-स्थान पर खुदाई में प्राचीन प्रतिमाएं प्राप्त होती हैं। अमरसर के धोरे में प्राप्त प्रतिमाएं बीकानेर के म्यूजियम में प्रदर्शित हैं। अकबर का अधिकारी तुरसमखान सहस्राधिक प्रतिमाएं सं० १६३३ में सिरोही की लूट में लाया था जिन्हें वह गला कर सोना निकालना चाहता था। सौभाग्यवश अकबर ने गलाना मनाकर उसे अपने खजाने फतेहपुर सिकरी में रख दी थीं, जिन्हें सं० १६३६ में मंत्रीश्वर कर्मचन्द्र वच्छावत राजा रायसिंह के सहयोग से प्राप्त कर बीकानेर ले आये जो आज भी चिंतामणि जी के मन्दिर में विद्यमान हैं।

धातु प्रतिमाएँ न केवल गुजरात, राजस्थान में ही अपितु सारे भारत में संप्राप्त हैं। श्वेताम्बर, दिगम्बर उभय परम्पराओं में धातु प्रतिमाएं निर्मित होती थीं, दक्षिण भारत में तो आज भी पर्याप्त परिमाण में जैन-जैनेतर धातु प्रतिमाएँ उपलब्ध हैं। कहा जाता है कि बीकानेर महाराजा अनूपसिंह भी बहुत-सी धातु प्रतिमाएँ प्राप्त करके बीकानेर लाए थे जो बीकानेर के पुराने किले के बड़े कारखाने में स्थित तेतीस करोड़ देवताओं के मन्दिर में देखी गई थीं। हमारे संग्रह में भी ऐसी विविध प्रतिमाएं विद्यमान हैं। बंगाल में मृण्मय मूर्त्तिकला तो दिनों-दिन विकसित होती जा रही है किन्तु धातुमय प्राचीन जैन-जैनेतर प्रतिमाएँ भी पायी जाती हैं। जैन प्रतिमाएं सहस्राब्दि पूर्व की अनेक सम्प्राप्त है। नेपाल और तिब्बत की कलापूर्ण बौद्ध प्रतिमाएं तो प्रचुर परिमाण में पायी

जाती है। प्राचीन कालसे ही तीर्थयात्री संघों के साथ जो चैत्यालय—रथ रहते थे उनमें सुविधा की दृष्टि से अधिकतर धातु प्रतिमाएँ ही ले जायी जाती थीं। आज तो विदेशों में सैकड़ों जैन प्रतिमाएं सरकारी संग्रहालय में, व्यक्तिगत संग्रहों में चली गई हैं पर प्राचीन काल में भी गई हुई प्रतिमाएं संप्राप्त हैं। आस्ट्रेलिया के हंगरी प्रान्त में एक अंग्रेज के खेत में जिन प्रतिमा व नवपद यंत्र निकले थे। दशवीं शती की एक जिन प्रतिमा केमला (बुल्गेरिया) के राजग्राद म्यूजियम में सुरक्षित है, जो कभी किसी भारतीय समुद्रयात्री द्वारा वहाँ ले जायी गई प्रतीत होती है। यह प्रतिमा सिंहासन पर अकेली बैठी है, इसमें सिंहासन के स्तर व बीच में एक व नीचे वाले सिंहासन पर तीन आकृतियाँ हैं, नवग्रह नहीं। चीन के किसी बौद्धायतन में जिन प्रतिमा पूजी जाने का उल्लेख मोतीशाह सेठ के समय का प्राप्त है। सत्रहवीं शताब्दी के वर्द्धमान पद्मसिंह चरित्र में उनके चीन से व्यापार का विशद् वर्णन मिलता है। धर्मप्राण साहसी जैन व्यापारी अपने आराध्य देव की प्रतिमाएँ उपासना के हेतु साथ ले जाया करते थे।

प्राचीनकाल से धातु-प्रतिमाओं के निर्माण होने की प्रथा सार्वत्रिक थी। न केवल भारत में ही बल्कि विदेशों में भी प्रतिमा निर्माण में मिश्रित धातुओं से प्रतिमाएं निर्मित होती थीं। ईसा से पूर्व चतुर्थ शताब्दी में ब्रुटस की कांस्य प्रतिमा का मस्तक रोम में प्राप्त हुआ था। भारत में तो लाखों वर्ष पूर्व भी मल्लिनाथ चरित्र में पूर्वजन्म के मित्रों के प्रतिबोधार्थ उनकी तदाकर स्वर्ण-मूर्त्ति बनवाये जाने का वृत्तान्त पाया जाता है।

खंडगिरि-उदयगिरि में हाथी गुम्फा के सुप्रसिद्ध शिलालेख में वर्णित कलिंग-जिन आदिनाथ भगवान की जिस प्रतिमा को राजा नंद ले गया था, महामेघ-वाहन चक्रवर्त्ती सम्राट खारवेल मगध देश को जीत कर उस प्रतिमा को पुनः कलिंग में लाया। वह प्रतिमा अति प्राचीन और स्वर्णमय थी, ऐसा कई विद्वानों का मत है।

बम्बई के प्रिंस आफ वेल्स म्यूजियम में भ० पार्श्वनाथ की कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़ी हुई कांस्य प्रतिमा है जिसका दाहिना हाथ खण्डित है। प्रभु के दोनों पैरों के बीच पृष्ठ भाग में रहा साँप मस्तक पर फण किए अवस्थित है। इस प्रतिमा का निर्माण काल ईसा के एक शताब्दी पूर्व होने का अनुमान किया जाता है। इसका प्राप्ति स्थान अज्ञात है, विद्वानों ने इसे हड़प्पा और मौर्यकाल की कला से तुलना की है। यह प्रतिमा मोम साँचा विधि से ढली हुई हल्की

प्रतिमा है। जैन साहित्य में प्रतिमा निर्माण के लिए बिंब भराना शब्द प्रचलित है जो धातु रस को साँचे में ढालने-भरने की प्रक्रिया से सम्बन्धित है।

पटना म्यूजियम में चौसा से प्राप्त कतिपय कांस्य निर्मित जिन प्रतिमाएँ एवं एक अशोक वृक्ष और धर्मचक्र है। ये गुप्त और गुप्तोत्तर काल की मगध मूर्त्तिकला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। दो चन्द्रप्रभ प्रतिमाएं सिंहासन पर स्थित है जिनके सिंहासन के ऊपर प्रभु के पृष्ठ भाग में अलंकृत स्तंभ व अर्द्ध गोलाकार प्रभामण्डल है। स्तम्भों पर मकरमुख है जिनकी मुड़ी हुई जिह्वा पूँछ की तरह वृत्ताकार हो गई है। इस प्रभामण्डल पर चन्द्रलांछन बना हुआ है। प्रतिमा के ऊपरी भाग में लांछन इन्हीं प्रतिमाओं में देखा गया है। तीसरी प्रतिमा भगवान ऋषभदेव की है जिसके स्कन्धों पर केश राशि स्पष्ट है। प्रभु के नीचे पद्मासन या सिंहासन न होकर केवल दो पाये सामने परिलक्षित हैं। चौथी प्रतिमा पार्श्वनाथ भगवान की फणा मंडित है। जिसके नीचे द्विस्तरीय सिंहासन है। देह की ऊंचाई और मुख मंडल की सौम्यता देखते भ० ऋषभदेव और पार्श्वनाथ प्रतिमाएँ चंद्रप्रभ प्रतिमाओं से प्राचीन प्रतीत होती हैं। यहाँ एक और ऋषभदेव भगवान की प्रतिमा है जो प्रथम के सदृश ही है। इन प्रतिमाओं में श्रीवत्स चिह्न बने हुए हैं। भगवान् ऋषभदेव की एक खड्गासन प्रतिमा है जिसके स्कन्ध प्रदेशों पर केश राशि फैली हुई है, मस्तक के पृष्ठ भाग में वृक्ष जैसा बना हुआ प्रतीत होता है।

नालन्दा के राष्ट्रीय संग्रहालय में एक अम्बिका की कांस्य मूर्त्ति उपलब्ध हुई है, जो नौवीं-दशवीं शती की सुन्दर कृति है। देवी का दाहिना गोड़ा नीचे पादपीठ पर रखा हुआ है और बाँयें गोड़े पर बालक बैठा हुआ है। सिंह पर विराजमान देवी के पृष्ठ भाग में चतुष्कोण पट्टिका लगी है। जिसके ऊपर उभय पक्ष में मकरमुख निकले हुए हैं। देवी के गले में हार कुण्डल और एक शृंखला यज्ञोपवीत की भाँति दाहिने गोडे पर आयी हुई है। मुखकमल के पृष्ठ भाग में प्रभामण्डल सुशोभित है जो लंबगोल है।

धनबाद जिले के अलुआरा में २९ कांस्य मूर्त्तियाँ उपलब्ध हुई हैं जो पटना संग्रहालय में हैं। इनमें अधिकांश खड्गासन प्रतिमाओं की हथेलियां और अंगुलियाँ देह का स्पर्श करती हैं। ललाट पर उर्णा का अंकन है और पाद-पीठों पर विभिन्न पट्टिकाओं में अलंकरण के साथ-साथ लांछन बने हुए हैं। जिससे ऋषभदेव, चन्द्रप्रभ, अजितनाथ, शांतिनाथ, कुंथुनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर और अम्बिका मूर्त्तियाँ सहज में पहिचानी जाती हैं। निर्माण शैली के आधार पर ये ग्यारहवीं शती के प्रारंभ की विदित होती हैं।

मानभूम से प्राप्त एक आदिनाथ भगवान की कांस्य मूर्ति कलकत्ता के आशुतोष म्यूजियम में संरक्षित है, जो नौवीं-दशवीं शताब्दी की है। कन्धे पर केशावली और मस्तक पर जटा-किरीट है, चौकी पर बड़ा वृषभ है और कमलासन पर आजानुबाहु प्रभु की प्रतिमा है।

बंगाल के चौबीस परगना में नलगोड़ा एक स्थान है जहाँ तीर्थंकर नेमिनाथ स्वामी की अधिष्ठातृ यक्षी अम्बिका की सुन्दर कांस्य प्रतिमा प्राप्त हुई है। यह प्रतिमा धनुषाकार फैले हुए वृक्ष के निम्न भाग में कमलासन पर अवस्थित है। जो एक सुन्दर जालीदार पादपीठ पर है जिससे आम वृक्ष का तना वाम पार्श्व से निकला है। इसके पास भगवती अम्बिका का वाहन सिंह बैठा हुआ है। देवी के बाँयें गोद में बालक है जिसका दाहिना हाथ देवी के स्तन पर है, दाहिनी ओर दूसरा बालक निरावरण दशा में पादपीठ पर खड़ा है। देवी के हाथों में चूड़ियाँ, पैरों में नूपुर और गले में हार व कानों में कर्णफूल हैं। गोड़े से थोड़े नीचे साड़ी के गोल सल स्पष्ट परिलक्षित हैं। क्षीण कटिप्रदेश और कृशोदर पर साड़ी लपेटी हुई है। यह प्रतिमा दशवीं शती की प्रतीत होती है।

मध्य प्रदेश के सभी मन्दिरों में विविध कलापूर्ण धातु प्रतिमाएँ संप्राप्त हैं। इन सब में आरवी के सेतवालों के मन्दिर की धातु प्रतिमा अपना विशिष्ट महत्त्व रखती है। प्रान्त की अन्य प्रतिमाओं की भाँति यह भी अर्द्धपद्मासन मुद्रा में कमलासन पर स्थित है। पश्चात् भाग में लगा हुआ तकिया एक जैनवास्तु बाह्यविधा है। तकिये के उभय पक्ष में ग्रास एवं ऊपर के मकरमुख बड़ी ही बारीकी से अभिव्यक्त हैं। मूल प्रतिमा के छत्रत्रय के चतुर्दिक् पीपल-पत्तियों का अंकन है। यह चौबीसी है, सभी छोटी प्रतिमाएँ भी अर्द्धपद्मासन मुद्रा में हैं। मूल प्रतिमा के उभयपक्ष स्थित चामरधारी और चरणों के निकट स्थित देव व चतुर्भुजी देवी भी अर्द्धपद्मासन स्थित है और विविध अलंकार व आयुधों से परिपूर्ण हैं। सारी प्रतिमा चार खंभों पर स्थित है, इस प्रतिमा में विभिन्न आकृतियाँ उत्कीर्णित हैं, इसका ढांचा एक मन्दिर के शिखर का आभास करा देता है।

सिरपुर की आदिनाथ प्रतिमा

स्व० मुनिश्री कान्तिसागर जी ने अपने मध्यप्रदेश प्रवास में अनेक उपलब्धियाँ की थीं जिनमें दो धातु प्रतिमाएँ वे लगभग ३५ वर्ष पूर्व कलकत्ता लाये थे। इनमें एक तो बौद्ध देवी तारा की प्रतिमा अनुपम कला की साकार

रूप थी, दूसरी भगवान ऋषभदेव की। उस समय विस्तृत अध्ययन कर लेख प्रकाशित किए गये थे। उन्हें वे प्रतिमाएँ सिरपुर के महन्त मंगलगिरि से प्राप्त हुई थीं। मैंने पहले उनसे बीकानेर में रखने की बात की थी पर पुरातत्त्वाचार्य श्री जिनविजय जी के कलकत्ता पधारने पर उन्होंने उन्हें समर्पित कर दी। जिनविजय जी ने बौद्ध प्रतिमा को भारतीय विद्याभवन में दे दी। कुछ वर्ष पूर्व जयपुर म्यूजियम के क्यूरेटर श्री सत्यप्रकाश जी ने मुझे बतलाया कि वह प्रतिमा तो अमेरीका में देखी थी, यह तो हुई बौद्ध प्रतिमा की बात। दूसरी आदिनाथ प्रतिमा मैंने कलकत्ता में श्री राजेन्द्रसिंह जी सिंघी के पास देखी।

सिरपुर से प्राप्त प्रतिमा दशवीं शताब्दी की मालूम देती है। यह ताम्रवर्णी प्रतिमा कला की दृष्टि से अपना विशेष महत्त्व रखती है। मध्य कमलासन पर युगादिदेव विराजमान हैं जिनके स्कंध प्रदेश पर केशावली प्रसारित है। पृष्ठ भाग का अलंकृत प्रभामण्डल पर्याप्त बड़ा और कलापूर्ण है। भगवान के कमलासन पर वृषभ लांछन स्पष्ट परिलक्षित है और निम्न भाग में नवग्रहों की बड़ी-बड़ी मूर्त्तियाँ विराजमान हैं। अनेक मूर्त्तियों की भाँति नवग्रह कहलाने वाली मूर्त्तियाँ आठ ही पायी जाती हैं क्योंकि वास्तुसार के अनुसार राहुकेतु को एक ही मान लिया गया है। दाहिनी ओर अम्बिका देवी है जिसकी बाँयी गोद में व दाहिनी ओर सिद्ध-बुद्ध बालक विद्यमान है। इनके दाहिनी ओर परिकर के निकले टोड़े पर यक्षराज विराजमान हैं। भगवान के वामपार्श्व में शासन देवी स्थित है।

भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ द्वितीय भाग में भानपुर (उड़ीसा) के कुछ धातुनिर्मित चौबीसी आदि के चित्र प्रकाशित हैं। प्रस्तुत चौबीसी प्रतिमा बड़ी ही विलक्षण और अद्वितीय विधा वाली है। कटक-भुवनेश्वर मार्ग पर नदी की मिट्टी खोदते समय नकुलभट्ट खंडायत को पाँच प्रतिमाओं की प्राप्ति हुई थी। उसने एक मन्दिर बनवाकर उसमें उन्हें विराजमान कर दिया है।

इन प्रतिमाओं के मध्यवर्त्ती चतुर्विंशति पट्टक के मध्य भाग गोलाकार में १२, ऊपर ८ और चारों कोनों में कुल २४ मूर्त्तियाँ हैं। इनके अतिरिक्त नीचे के भाग में पार्श्वनाथ और शीर्षस्थ महावीर स्वामी की प्रतिमा है। दोनों ओर सिंह स्तंभ पर तोरण अवस्थित है। निम्नभाग में देवी देवताओं की प्रतिमाएँ परिकर में अवस्थित हैं। यह मूर्त्ति सं० १०६० की निर्मित है। इसके साथ दो-दो खड्गासन प्रतिमाएँ हैं जिनमें एक पार्श्वनाथ और तीन

ऋषभदेव भगवान की है। इनकी ऊँचाई ६ इंच की दो, ६ इंच की एक और एक ११ इंच की है। ग्यारह इंच वाली कमलासन पर खड़ी ऋषभदेव प्रतिमा में चतुर्दिक नौ ग्रह बने हुए हैं, वह प्रतिमा भी अपने ढंग की एक ही है।

भानपुर के पास दो मील प्रतापपुर गाँव में भी प्रतिमाएँ निकली थीं, उड़ीसा में जैन प्रतिमाएँ प्रचुर परिमाण में प्राप्त हैं। कटक के चन्द्रप्रभ जिनालय में एक ऋषभदेव भगवान की धातुमय खड्गासन प्रतिमा बड़ी भव्य है। प्रभु की केश राशि उभय भाग में तीन-तीन लटाओं में प्रसारित हैं। चौरस सिंहासन पर गोल कमलासन पर प्रभु खड़े हैं। उभय सिंहों के मध्य में कुंभ रखा हुआ है और आगे निकले हुए अलग पाये पर लांछन स्वरूप वृषभ बैठा है।

उड़ीसा के राजकीय संग्रहालय में, बानपुर से प्राप्त कांस्य प्रतिमाओं का महत्वपूर्ण संग्रह है। उनमें (१) आम्रवृक्ष के नीचे बैठी, गोद में बालक को लिए हुए अम्बिका। (२) वृक्ष की शाखा को पकड़ कर खड़ी अशोका या मानवी देवी जिसके आसन पर रीछ अंकित है। (३) सप्त फणा पत्री युक्त पार्श्वनाथ। (४) सर्प लांछन से अंकित पादपीठ पर बड़े पार्श्वनाथ। (५) कमल पुष्प युक्त पादपीठ पर कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े आदिनाथ की मूर्त्ति।

इनमें आदिनाथ प्रतिमा उत्कृष्ट कला कौशल का उदाहरण है। सुन्दर जटाजूट मण्डित प्रभु की प्रशान्त मुख मुद्रा और शरीर का सौम्य गठन प्रेक्षणीय है। उस पर उत्कीर्णित अभिलेख के अनुसार यह भीकर.संज्ञक व्यक्ति द्वारा निर्मापित है। ये प्रतिमाएँ कला की दृष्टि से दशवीं शताब्दी की हो सकती हैं जिनका अध्ययन होना आवश्यक है।

उड़ीसा के ककटपुर से प्राप्त एक ऋषभदेव भगवान की सुन्दर प्रतिमा कलकत्ता के इण्डियन म्यूजियम में प्रदर्शित है। यह कांस्य प्रतिमा सुन्दर पाद-पीठ पर कमलासन के ऊपर अवस्थित है। पादपीठ पर मध्य भाग में वृषभ (लांछन) बैठा हुआ है। प्रभु की कायोत्सर्ग मुद्रा में हाथों की अंगुलियाँ देह का स्पर्श कर रही हैं। मस्तक पर ऊंचा उष्णीष और स्कंध प्रदेश पर दोनों ओर तीन-तीन लटों में केश राशि फैली हुई है। प्रतिमा के पादपीठ पर म्यूजियम का क्रमाङ्क १२४३ लिखा हुआ है। दूसरी चंद्रप्रभ प्रतिमा आशुतोष संग्रहालय में है जो ११वीं शती की मालूम देती है।

छठी शताब्दी के शैलोद्भव राजा धर्मराज के बानपुर ताम्रलेख में उसकी रानी कल्याण देवी द्वारा एक शतप्रबुद्धचंद्र नामक जैनमुनि को कुछ भूमि देने का उल्लेख है। (बाबू छोटेलाल जैन स्मृति ग्रन्थ पृ० १७०)

अंबिका—एलोरा की कांस्य मूर्त्ति—खड़ी अंबिका के पास में एक बालक खड़ा है। द्विस्तरीय सिंहासन पर गोल कमलासन है। नीचे बालक बगल में खड़ा है।

झवारी-मन्दिर कांस्य जिनालय अनुकृति लगभग ११वीं शती की है। इसका शिखर चौरस है व चारों ओर चौमुख भगवान विराजमान करने का स्थान है। यहाँ एक मूल प्रतिमा विहीन परिकर मांधाता (निमाड़) से प्राप्त हुई है, जिसमें सं० १२४१ का अभिलेख है। इसमें विद्याधर, यक्ष, चामर-धारी पुरुष और भक्तजन बने हुए हैं।

सं० ११८८ की बनी एक शांतिनाथ प्रतिमा विक्टोरिया व अलबर्ट म्यूजियम में है।

वेकुणम्—यहाँ के जैन मन्दिर में ७ खड़ी कांस्य मूर्त्तियाँ हैं जिनमें पार्श्वनाथ के सिर पर सर्पफण है। इनमें घुंघराले बाल, आँखें व मुखाकृति में रूक्षता है।

[क्रमशः

अर्द्ध कथानक

बनारसी दास

[पूर्वानुवृत्ति]

पिताजी किसी भी प्रकार इस आमंत्रण को स्वीकार करना नहीं चाहते थे। किन्तु कर्मचन्द सच्चे हृदय से विनय पूर्वक उनसे बार-बार अनुरोध करने लगे। वे बोले—"आप मेरे मालिक हैं। मैं आपका दास हूँ। मुझ पर दया कर आप मेरे घर चलिए। अब देर मत कीजिए, मैं आपको अपने साथ वहाँ ले चलूँगा।"

उनके बार-बार प्रबल आग्रह करने पर पिताजी ने अपनी सम्मति दी। सम्मति देते ही हम सब कर्मचन्द के मकान पर पहुँचे। अन्ततः सिर छिपाने को कहीं स्थान तो मिला।

पिताजी ने घूम-फिरकर उस मकान को देखा और खुश हुए। दैनन्दिन जीवन-यापन की समस्त वस्तुएँ वहाँ थी। काँसा-पीतल के स्वच्छ बर्त्तन, मिट्टी की हाँड़ी-कुण्डी, तकिया-बिछौना, ओढ़ने की चादरें, दाल-चावल, आटा, घी, नमक, मिर्च, तेल इत्यादि सहित कर्मचन्द ने पिताजी को एक ऐसा घर प्रदान किया था जहाँ किसी चीज का अभाव नहीं था। पिताजी के प्रति करमचन्द का प्रेम और स्नेह सचमुच ही बहुत प्रगाढ़ था। किन्तु पिताजी इतना सब कुछ लेना नहीं चाहते थे।....पर कर्मचन्द पूर्व की ही भाँति बार-बार हार्दिक अनुरोध अनुनय विनय कर उनके पैरों पर गिरकर निष्कपट मन से केवल सौहार्दवश सब कुछ देना चाहते थे।

मैं कर्मचन्द की महानुभावता को भाषा में व्यक्त नहीं कर सकता। अपने स्वधर्मी बन्धु के लिए उन्होंने अपना घर उस समय छोड़ा जबकि मूसलाधार वर्षा से सारा शहर जलमय था।

कई दिनों के अत्याचार और उत्पीड़न सहने के पश्चात् पिताजी को फिर स्वच्छन्दता और आराम मिला। उनके वे दुःस्वप्न से दिन मेरी आँखों के सम्मुख तैर उठे।

अभी कुछ दिन पूर्व ही तो नवाब किलिजखान ने उन्हें बन्दी बनाकर उन पर निर्मम अत्याचार किए और अब पुनः सुख के दिन लौट आए।

साधारण मनुष्यों की दृष्टि में इन घटनाओं के घटित होने में लगेगा दोनों घटनाएँ एकदम भिन्न है, इनमें कोई संगति ही नहीं है किन्तु, एक भिन्न दृष्टिकोण से देखने पर लगेगा सुख और दुःख सचमुच ही दोनों सगे भाई हैं। जो दुःख पाता है वही सुख का अनुभव कर सकता है, जो सुखी है उसने निश्चय ही दुःख का भी अनुभव किया है। किन्तु अज्ञानी मनुष्य जिस समय भाग्य प्रसन्न रहता है, समय अनुकूल रहता है तब केवल ऐश्वर्य और सुख की बात ही सोचते हैं। जब दुःख आता है तो वेदना से विमूढ़ हो जाते हैं। वे सुख-दुःख को परस्पर विरोधी समझते हैं। ज्ञानी वे ही हैं जो सुख-दुःख में समभाव से रहने की चेष्टा करते हैं, सुख-दुःख से अभिभूत नहीं होते। वे सूर्य की भाँति होते हैं जिनका रंग उदय और अस्त दोनों ही समय लाल होता है।

मेरे पिताजी और कर्मचन्द माहूर के मध्य गम्भीर बन्धुत्व स्थापित हो गया। अतः दोनों हर समय साथ-साथ ही रहते।

पिताजी शाहजादपुर दस महीने रहे फिर वे वहाँ से प्रयाग चले गए। उन्होंने सोचा प्रयाग में उनका व्यवसाय उपयुक्त रूप से चलेगा कारण उस समय प्रयाग के शासक थे अकबर के पुत्र दनियाल।

हम सब शाहजादपुर रह गए। मैं भी अब एक छोटा-सा बनिया बन गया था। कारण कौड़ी बेचकर कुछ सामान्य आय करने लगा था। इस सामान्य आय ने ही मुझ में आत्म-विश्वास और मर्यादा बोध भर दिया। मैंने अपनी छोटी-सी आय अपनी दादी माँ के हाथों में दी। मेरी सफलता पर वे फूली नहीं समायीं। जिस दिन मेरी प्रथम आय मिली उन्होंने कुल-देवी सती ओत का पूजोत्सव किया और बन्धु-बान्धव आत्मियों में सिरनी, लड्डू, मुकुती एवं अन्य मिठाइयाँ वितरीत कीं।

मेरी दादी माँ की सती ओत पर बहुत श्रद्धा थी। उनका विश्वास था कि सती माँ की कृपा से ही मेरा जन्म हुआ है। वे असाधारण धर्मपरायणा महिला थीं। स्वप्न में समय-समय हमारे कुल पितर उन्हें दिखते थे। भविष्य के लिए वे उनसे सांकेतिक निर्देश प्राप्त करती थीं। पितरगण जो कुछ उन्हें कहते वे उसे परिजनों को सुनाती और उसका क्या अर्थ है यह दिन-रात सोचती रहतीं। मूढ़ लोगों की यही रीति है। उन्हें बोलकर भी कोई फायदा नहीं होता। कारण केवल बोलने से उनकी धारणा को बदला नहीं जा सकता। मनुष्य जैसा विश्वास करता है वैसा ही कार्य करता है और तदनुसार ही फल पाता है।

तीन मास पश्चात् अर्थात् जौनपुर छोड़ने के तेरह महीने बाद पिताजी की चिट्ठी मिली उसमें उन्होंने हमें शाहजादपुर छोड़कर फतेहपुर जाने को लिखा था। मैंने दो पालकी और चार कहार भाड़े पर किए और समस्त परिवार को लेकर फतेहपुर को रवाना हुआ। फतेहपुर पहुँचकर जिस अंचल में ओसवाल जैन रहते थे उसकी खोज की। वहाँ वसुशाह के पुत्र भगवतीशाह ने हमें ग्रहण किया। वसुशाह अपने समय के ख्याति प्राप्त आध्यात्मिक थे। फतेहपुर में उनके कई लड़के रहते थे। भगवती शाह भी उन्हीं में एक थे।

भगवती शाह ने अपने घर में रहने के लिए हमें एक कमरा दिया। वहाँ हम कुछ दिन बहुत आनन्द पूर्वक रहे। तभी हमें पिताजी की एक और चिट्ठी मिली। जिसमें उन्होंने मुझे इलाहाबाद आने को लिखा। मैं शीघ्रता पूर्वक इलाहाबाद चला गया। बहुत दिनों बाद एक दूसरे को देखकर हम बहुत आनन्दित हुए। हमारा परिवार फतेहपुर में ही था।

इलाहाबाद में पिताजी ने जवाहिरात का व्यापार खूब अच्छा जमा लिया था। व्याज पर रुपया उधार देने का काम भी वे करते थे साथ-साथ अन्य वस्तुओं का भी। इसी प्रकार चार मास व्यतीत हो गए। हानि-लाभ दोनों ही हुआ। सुसमय के पश्चात् दुःसमय, दुःसमय के पश्चात् सुसमय। फिर पिता जी फतेहपुर गए। मैं भी उनके साथ हो गया। पुनः हमारा परिवार एकत्रित हुआ।

दो मास पश्चात् सुसंवाद मिला। नवाब किलिज को आगरा बुला लिया गया है। अब हम निरापद रूप से जौनपुर लौट सकते हैं। अन्य जौहरीगण भी उसी प्रकार लौट आए थे जिस प्रकार भू-गर्भ में खोया मनुष्य पुनः लौट आता है। व्यवसाय भी आगे की ही तरह चलने लगा।

यह घटना विक्रम सम्वत् १६५६ की है। पूरा एक वर्ष निर्विवाद पूर्वक कट गया। एक वर्ष पश्चात् विपद की संभावना लिए अकबर के ज्येष्ठ पुत्र शाह सलीम वहाँ आए। प्रकट रूप से तो वे दल-बल लेकर जौनपुर के निकट कल्हूपुर में शिकार करने आए थे किन्तु उनके उद्देश्य के सम्बन्ध में कुछ संदिग्धता होने के कारण अकबर ने जौनपुर के नवाब को आदेश दिया जैसे भी हो सलीम को कल्हूवन जाने से रोको। उस समय जौनपुर में किलिज खान का छोटा भाई नूरम सुलतान शासन कर रहा था। उसने विपद् अवस्था घोषित कर नगर में सैन्य एकत्रित की। जौनपुर आने के समस्त पथों को अवरुद्ध कर दिया। गोमती नदी में नौका का चलना भी बन्द कर दिया। नगरद्वार बन्द-कर जौनपुर युद्ध के लिये प्रस्तुत होने लगा। स्थान-स्थान पर अश्वारोही

और पैदल सैनिक नियुक्त किए गए। प्रत्येक मोहल्ले में चौकीदार बैठे। दुर्ग की दीवारों पर अग्निवर्षण के लिए कमान सजाए गए।

दीर्घ अवरोध के लिए अन्य व्यवस्थाएँ की गयी। नूरम सुल्तान ने राज कोष खोल दिया। दुर्ग में प्रचुर परिमाण में खाद्य, चावल, वस्त्र, जल संग्रहित किया गया। बन्दूक और अन्यान्य अस्त्रादि, घोड़े के जिन व पीपा भर-भर के मद्य भी संग्रह किया गया। इस प्रकार प्रस्तुति पर्व समाप्त होने पर नूरम युद्धोद्यत सेनापति-सा आचरण करने लगा।

वहाँ के अधिवासीगण यह सोचकर कि न जाने कब युद्ध छिड़ जाए, आक्रमण हो जाए, नगर छोड़-छोड़ कर भागने लगे। सारा नगर जनशून्य हो गया। केवल जौहरी लोग एक मुहल्ले में रह गए। उन्हें भी अपने परिवार और आत्मियों की चिन्ता लग रही थी किन्तु क्या करें कुछ स्थिर नहीं कर पा रहे थे। नगर में रहना निरापद नहीं था लेकिन भाग जाना भी आपद मुक्त नहीं था। उभय संकट में पड़े उन्होंने नवाब के पास जाकर उनकी सलाह माँगी किन्तु नवाब भी उन्हें कोई आश्वासन या राय नहीं दे सका। वह बोला—"मैं तो स्वयं ही उभय-संकट में पड़ा हूँ अतः मैं आपको क्या सलाह दूँ। आपको स्वयं ही स्थिर करना होगा कि रहें या जाएँ।"

निराश होकर जौहरीगण घर लौटे। अन्ततः उन्होंने भी नगर छोड़ना ही स्थिर किया। सोचा—जो भाग्य में होना होगा वही होगा।

अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार सब जौहरी लोग भी चले गए। जिनके आत्मीय स्वजन थे वे उनके पास चले गए, जिनके कोई नहीं था वे सुविधानुसार जहाँ-तहाँ छिप गए। मेरे पिताजी लक्ष्मणपुर के निकट एक गाँव में भागे। वहाँ दुल्ला शाह ने भी आश्रय लिया था। वहाँ के चौधरी का नाम था लक्ष्मण दास। उन्होंने पिता जी को एक जंगल में छिपा दिया और उन्हें सब प्रकार से सहायता करने का आश्वासन दिया। प्रायः एक सप्ताह बाद खबर आई कि जौनपुर पुनः स्वाभाविक अवस्था में आ गया है।

जो कुछ घटा वह यह है—शहजादा सलीम जिस समय गोमती नदी के तट पर उपस्थित हुए तब उन्होंने अपने दल के लाला बेग नामक एक सम्भ्रान्त व्यक्ति को नूरम खान के पास दौत्य के लिए भेजा। दौत्य कर्म में लाला असाधारण दक्ष थे। उन्होंने मधुर भाषा में बिना नत हुए सलीम से मिलने के लिए नूरम खान को अपने साथ चलने को राजी कर लिया। नूरम खान जिस समय सलीम के दरबार में आए भयभीत से उनके पैरों में आ गिरे। सलीम ने उन्हें अभय और आश्वासन दिया साथ ही अपनी शुभेच्छा प्रकट की।

यह बात चारों ओर फैल गयी एवं मनुष्य पुनः अपने को निर्भय समझने लगे। प्लेग की भाँति जो भय नगर में व्याप्त हो गया था वह दूर हो गया। एक-एक कर सभी नागरिकगण पुनः लौट आए। पूर्व की तरह ही पुनः शान्त जीवन-यात्रा प्रारम्भ हो गयी। खड़गसेन और दुल्ला साह पुनः परिवार सहित नगर लौट आए।

मैं उस समय १४ वर्ष का हो गया था। ज्ञानार्जन की पिपासा के कारण मैं आगे और पढ़ने के लिए पण्डित देवदत्त के पास गया। शिक्षक रूप में उस समय वे बहुत प्रसिद्ध थे। उनसे मैंने विभिन्न विषयों की प्रामाणिक पुस्तकें पढ़ीं। जो पढ़ा उनमें नाममाला और अनेकार्थ-कोष भी था। ज्योतिष, अलंकार और कामशास्त्र का भी मैंने अध्ययन किया। पण्डित कोक प्रणीत कामशास्त्र का लघु कोक ग्रन्थ पढ़ा। इसके अतिरिक्त खण्डस्फुट पढ़ा जिसमें ४०० कविताएँ थी। सम्वत् १६५७ में मैं खूब पढ़ा और जो कुछ पढ़ा उस पर गम्भीरता से चिन्तन-मनन किया।

मुझमें जैसी ज्ञान पिपासा थी वैसी ही उग्र प्रेम पिपासा भी थी। मैं एक गणिका से प्रेम करता था। सूफी फकीरों-सी तन्मयता लिए मैंने स्वयं को पूर्णतः विसर्जित कर दिया था। मैं एकाग्रचित्त से केवल उसी का ध्यान करता। उसने मेरे चित्त पर पूर्णतः अधिकार कर लिया था। जब मैं उसके विषय में सोचता तब सामाजिक और पारिवारिक मर्यादा को एकदम भूल जाता। मैं इतने नीचे स्तर पर आ गया था कि उसे मूल्यवान उपहार और खाने की बढ़िया वस्तुएं देने के लिए पिता जी के कीमती जवाहरात और रुपये भी चोरी करने लगा। इस सम्बन्ध में मैं हर प्रकार से स्वयं को उसका दासानुदास समझने लगा और स्वयं को बेचारा कहकर उल्लिखित करने लगा।

[क्रमशः

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या

अमर भारती || सितम्बर १९८२

उपाध्याय श्री अमर मुनि के प्रवचनों के अतिरिक्त इस अंक में है 'आत्म-सिद्धि शास्त्र [हिन्दी पद्यानुवाद]' (श्री कीर्ति मुनियश), 'तप : एक विवेचन' (डा० उम्मेदमल मुनोत), 'बन्धन और मुक्ति' (डा० सागरमल जैन), 'संवत्सरी महापर्व : एक चिन्तन' (मुनि श्री नगराज), 'सम्वतसरी पर्व कब से ?' (श्री ज्ञान मुनि)।

जय-गुञ्जार || अगस्त-सितम्बर १९८२

सोजत शिविर विवरण सहित इस अंक में है 'जैन साहित्य का सर्वदर्शनों पर प्रभाव' (राज किशोर जैन)।

जिन-वाणी || सितम्बर १९८२

आचार्य श्री हस्तीमल जी के प्रवचनों के अतिरिक्त इस अंक में है 'Syadwad and the Theory of Relativity' (Dr. M. S. Mardia)।

जैन जगत || सितम्बर १९८२

सम्पादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है 'आत्म-साक्षात् की प्रक्रिया [३]' (युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ), 'कषाय से समाय की ओर' (डा० नरेन्द्र भानावत)।

जैन सिद्धान्त भास्कर/Jaina Antiquary || जुलाई १९८२

इस अंक में है 'सत्रहवीं शताब्दी के व्यापार में जैन व्यापारियों का योगदान' (उमानाथ श्रीवास्तव), 'गणित के विकास में जैनाचार्यों का योगदान' (अनुपम जैन), 'चाणक्य जैन था ?' (गणेश प्रसाद जैन), 'श्रीमद् वादीभ सिंह सूरि' (डा० ज्योति प्रसाद जैन), 'लाला परमेश्वरी सहाय जी और बाबू जगमोहन दास जी' (सुबोध कुमार जैन), 'परमाणुखण्ड षट्त्रिंशिका एक समीक्षात्मक अध्ययन' (प्रेमलाल शर्मा, डा० शक्तिधर शर्मा), 'चित्रकार उपेन्द्र महारथी की जैन कला-कृतियाँ' (सुबोध कुमार जैन), 'Jaina Authors and Their Works' (Dr. Jyoti Prasad Jain), 'The Jain Doctrines of Nayavada in Relations to the Various Schools of Indian Philosophy' (Arvind Sharma), 'Jainism as a Religion

in Eastern U. P. During the Period C. 600-1200 A. D.' (Binod Kumar Tiwary), 'The Illustrious Heggedes of Karnataka' (Dr. Jyoti Prasad Jain).

श्रमण ।। सितम्बर १६८२

संपादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है 'आत्म सुख सभी सुखों का राजा' (आचार्य सम्राट आनन्द ऋषि), 'संवत्सरी महापर्व : स्वरूप और अपेक्षाएँ' (मुनिश्री नगराज), 'जैन हरिवंशपुराण—एक सांस्कृतिक अध्ययन' (लल्लू पाठक), 'महावीर की विहार भूमि मगध और उसकी संस्कृति' (गणेश प्रसाद जैन), 'चिन्तन : सम्यक् जीवन दृष्टि' (डा० हुकुमचन्द संगवे)।

Vol. VI No. 6 : Titthayara : October 1982
Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77

B -

Hewlett's Mixture
for
Indigestion

DADHA & COMPANY

and

C. J. HEWLETT & SON (India) PVT. LTD.

22 STRAND ROAD

CALCUTTA-700001